पं० मिलापचन्द्र कटारिया

जीवतत्त्व विवेचन

संसार अनादिकाल से छह द्रव्यों से परिपूर्ण है. उसमें एक जीवद्रव्य भी है. जीवों की संख्या सदा से ही अनंतानंत है. वे जितने हैं उतने ही रहते हैं, न घटते, न बढ़ते हैं. कोई भी जीव नया पैदा नहीं होता है और न किसी का विनाश ही होता है. अमुक प्राणी पैदा हुआ, अमुक मर गया, ऐसा जो कहा जाता है उसका अर्थ इतना ही है, कि किसी अन्य देह से निकलकर जीव इस देह में आया है. बस इसे ही उसका जन्म होना कहते हैं. और इस देह से निकलकर जीव अन्य देह में चला गया, बस यही उसका मरण कहलाता है. तत्त्वतः प्रत्येक जीव अजन्मा और अविनाशी है. उन अनंतानंत जीवों में कई जीव अशुद्ध रूप में और कई शुद्ध रूप में पाये जाते हैं. जो अशुद्ध रूप में हैं उन्हें संसारी जीव और शुद्ध रूप वालों को मुक्त जीव कहते हैं.

सब द्रव्यों में एक जीव द्रव्य ही चेतनामय है बाकी सब अचेतन-जड़ हैं. संसार में जो पदार्थ नेत्र आदि इंद्रियों द्वारा ग्राह्य होते हैं वे सब पुद्गल द्रव्य हैं. पुद्गलद्रव्य रूपी अर्थात् मूर्त्त होने से इंद्रियगोचर है. किंतु जीव द्रव्य रूपी व मूर्त्तिक नहीं है अतः वह किसी भी इंद्रिय के द्वारा ग्राह्य नहीं है. इसका अर्थ यह नहीं है कि वह शून्य रूप है. जीव भी अपनी सत्ता अवश्य रखता है. उसका भी कुछ न कुछ आकार रहता है. संसार-अवस्था में वह देह के आकार में रहता है और मुक्त अवस्था में उसके देह नहीं रहती, तथापि जिस देह को छोड़कर वह मुक्त होता है उस देह के आकार में (किंचित् न्यून) रहता है.

जीव में फैलने और सिकुड़ने की शक्ति विद्यमान है. वह अगर अधिक से अधिक फैले तो अकेला ही सारी सृष्टि को व्याप्त कर सकता है किंतु उसे विभिन्न भवों में जितने प्रमाण का देह मिलता है उतने ही प्रमाण का होकर रहना पड़ता है. भवांतर में ही नहीं, किसी एक भव में भी बाल्यावस्था के छोटे शरीर में छोटा बनकर रहता है, युवावस्था के बड़े शरीर में बड़ा बनकर रहता है फिर वही शरीर वृद्धावस्था में कृश हो जाता है तो उसमें कृश होकर रहने लगता है. जैसे दीपक का प्रकाश छोटे बड़े कमरे में सिकुड़ता-फैलता है, वैसे ही जीव भी बड़ी-छोटी देह में फैलता सिकुड़ता है. प्रत्यक्ष में यह भी देखा जाता है कि जब मनुष्य के दिल में कामवासना पैदा होती है तो उसकी कामेन्द्रिय का प्रमाण बढ़ जाता है. उसी के साथ उसके आत्मप्रदेश भी बढ़ जाते हैं और कामेन्द्रिय का संकोच होने पर उसके आत्मप्रदेश भी संकुचित हो जाते हैं.

यहाँ शंका की जा सकती है कि जैसे दीपक का ढक्कन हटा देने पर उसका प्रकाश फैल जाता है, उसी तरह मोक्ष में जीव के साथ देह के न होने से वह लोक प्रमाण क्यों नहीं फैलता है ? इसका समाधान यह है कि जैसे कोई आदमी पाँच हाथ की लंबी डोरी को समेट कर अपनी मुट्ठी में बंद कर ले. फिर कालांतर में मुट्ठी खोल देने पर भी वह डोरी बिना किसी के फैलाये अपने आप नहीं फैलती है, उसी तरह मोक्ष में देह के न रहने पर आत्मा के प्रदेश भी अपने आप नहीं फैलते हैं.

जीव को देहप्रमाण कहने का अर्थ यह है कि शरीर के प्रायः सभी अंशों में आत्मा के अंश मिले हुए हैं. जैसे दूध में घृत के अंश मिले रहते हैं. शरीर और आत्मा के अंश ऐसे कुछ घुलमिल जाते हैं कि उनकी संयुक्त क्रियाओं में कहीं तो आत्मा का असर शरीर पर होता दिखाई देता है और कहीं शरीर का असर आत्मा पर पड़ा दिखाई देता है. जैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा में क्रोध भाव उत्पन्न होने पर मुखाकृति का भयंकर बनना, भृकुटि चढ़ना, चक्षुका लाल होना आदि. इसी तरह हर्ष होने पर मुख का प्रफुल्लित होना, भय होने पर शरीर का कांपना, कामभाव होने पर कामेन्द्रिय में उत्तेजना होना यह सब शरीर पर होने वाला आत्मा का असर है. तथा बाल शरीर की अपेक्षा युवा शरीर में ताकत का अधिक होना, वृद्धावस्था में ताकत का घट जाना व स्थूल शरीर वाले पुरुष को दौड़ने-कुदने में कठिनाई का अनुभव होना, हाड़ मांस-मय एकसमान देह होते हुए भी स्त्री और पुरुष की भिन्न-भिन्न आकांक्षा होना अर्थात् स्त्री को पुरुष से रमण करने की और पुरुष को स्त्री से रमण करने की इच्छा होना इत्यादि उदाहरण शरीर का असर आत्मा पर पड़ने के हैं.

प्रश्न—अगर शरीर और आत्मा का इतना घनिष्ठ संबंध है तो दोनों को भिन्न न मानकर शरीर को ही आत्मा क्यों न मान लिया जावे ?

उत्तर—दोनों का स्वरूप भिन्न-भिन्न है. एक चेतन है दूसरा अचेतन है. अतः दोनों एक नहीं माने जा सकते हैं. अगर शरीर ही जीव हो तो मूर्छावस्था में शरीर के रहते भी वह अचेत क्यों हो जाता है ? और निद्रावस्था में कर्ण, रसना आदि इंद्रियों के होते हुए भी वह विषय को ग्रहण क्यों नहीं करता है. कोई मनुष्य शरीर और इंद्रियाँ ज्यों-की-त्यों रहने पर भी पागल कैसे हो जाता है ? इससे प्रकट होता है कि शरीर और आत्मा ये दो भिन्न-भिन्न चीजें हैं. जीव का स्वरूप जैन शास्त्रों में निम्न गाथा में कहा गया है—

जीवो उवओगमओ, अमुत्तो कत्ता सदेहपरिमाणो ,
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ।

—द्रव्य संग्रह : नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती

जीव चैतन्यमय है—जीता है, उपयोगमय है यानी ज्ञाता दृष्टा है, अमूर्तिक यानी इंद्रियों के अगोचर है, अच्छे-बुरे कार्यों का करने वाला है, उसका आकार अपना देह-प्रमाण है, और वह सुख-दुख का भोक्ता है. वह संसार में रह रहा है अर्थात् अनेक योनियों में जन्म मरण करता रहता है, शुद्ध स्वरूप से सिद्ध के समान है और ऊर्ध्वगमन उसका स्वभाव है. सब द्रव्यों में एक पुद्गल ही ऐसा द्रव्य है जो रूपी यानी दीखने में आता है, शेष सब अरूपी हैं. कुछ पुद्गल ऐसे भी होते हैं जो अपनी सूक्ष्मता से नेत्रगोचर नहीं भी होते हैं तथापि वे यंत्रादि के द्वारा ग्रहण योग्य होने से रूपी ही माने जाते हैं. जैसे गंध, शब्द, हवा आदि कुछ ऐसे भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म पुद्गल होते हैं जो सभी इन्द्रियों के अगोचर होने पर भी पुद्गल की जाति के ही माने जाते हैं जैसे कार्मणवर्गणा. जब कोई पुद्गल विशेष रूपी होकर भी अपनी सूक्ष्मता की वजह से नेत्रगोचर नहीं होते हैं तब जीवद्रव्य तो अरूपी है, वह दृष्टिमें तो क्या अन्य किसी भी इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण में नहीं आ सकता है इसी से भ्रम में पड़कर कई लोग कहने लगते हैं कि यह शरीर ही जीव है, शरीर से भिन्न कोई जीव नाम का द्रव्य नहीं है. किन्तु ऐसा समझना मिथ्या है. आत्मा सूक्ष्म अरूपी होने से भले ही आँखों आदि से ग्रहण में नहीं आता है तथापि जो देखने जानने वाला है, किसी की इच्छा करता है और जिसको हर्ष सुख-दुख का अनुभव होता है, वही आत्मा है. आत्मा के होने से ही प्रत्येक प्राणी को उसके शरीर के छिन्न-भिन्न करने से दुख होता है. आत्मा के निकल जाने पर मुर्दा शरीर को काटने जलाने आदि से कोई पीड़ा नहीं होती है. इससे जाहिर होता है कि आत्मा और शरीर दो भिन्न-भिन्न चीजें हैं. उसके अलावा स्मृति जिज्ञासा, संशयादि ज्ञान विशेष आत्मा के गुण हैं, उनका स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होने से उन गुणों वाला आत्मा भी प्रत्यक्ष है, क्योंकि गुण से गुणी भिन्न नहीं रहता है. जहाँ गुण है वहाँ गुणी भी अवश्य होता है. जैसे रूपादि गुण प्रत्यक्ष होने से उन गुणों का धारी घट भी प्रत्यक्ष है.

प्रश्न—माना कि गुण और गुणी अभिन्न हैं किन्तु शरीर ही आत्मा होने से वही गुणी है और ज्ञान उस शरीर का गुण है. ऐसा क्यों न मान लिया जाय ?

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि घट की तरह शरीर मूर्त्तिवान् और चक्षुगोचर है. वह अमूर्त्तिक ज्ञानादि गुणों का आधार गुणी नहीं हो सकता. गुण और गुणी में अनुरूपता होती है—निरूपता नहीं. अतः ज्ञानादि गुण जिसमें हैं वह शरीर से भिन्न अन्य कोई अरूपी द्रव्य है और वही आत्मा है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न—ज्ञानादि गुण शरीर के नहीं है. ऐसा कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है. सब पदार्थों का ज्ञान इन्द्रियों से होता है और इन्द्रियरूप ही शरीर है. इन्द्रियाँ न हों तो कुछ भी ज्ञान नहीं होता.

उत्तर—आत्मा को पदार्थ का ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा होता है. इसका अर्थ यह नहीं है कि आत्मा और इन्द्रियाँ अभिन्न हैं. क्योंकि चक्षु एवं कर्ण के न रहने पर भी अर्थात् अंधा बहरा हो जाने पर भी उनसे उत्पन्न पहिले का ज्ञान आत्मा को बना रहता है. जैसे खिड़कियों के द्वारा देखे हुए पदार्थों का बोध खिड़कियाँ बन्द कर देने पर भी देवदत्त को रहता है. अतः देवदत्त खिड़कियों से जुदा है वैसे ही आत्मा इन्द्रियों से जुदा है. इसी तरह इंद्रियों के रहने पर भी अगर आत्मा का उपयोग विषय-ग्रहण की ओर न हो तो पदार्थज्ञान नहीं होता है. इसलिए इन्द्रियों के होने पर भी आत्मा को पदार्थ ज्ञान नहीं होता और इन्द्रियों के न होने पर भी पदार्थज्ञान रहता है. इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि देहादि से आत्मा कोई जुदी चीज है.

इसके अतिरिक्त किसी दूसरे को इमली खाते देखकर मात्र उसका अनुभव करने से ही हमारे मुंह में पानी आ जाता है. दूसरे का रुदन सुनकर या उसके कष्ट का अनुभव करने मात्र से ही हमारी आँखों में अश्रु पैदा हो जाते हैं. यहाँ अनुभव करने वाला शरीर से भिन्न कोई आत्मा ही हो सकता है. एक इन्द्रिय से जानकारी हासिल करके दूसरी इन्द्रिय से कार्य करने, जैसे आंख से घटको देखकर हाथ उसे उठाने इत्यादि रूप में इन्द्रियों को सोच समझ कर काम में लेनेवाला भी, इन्द्रियों से भिन्न ही कोई हो सकता है. देवदत्त मकान की किसी एक खिड़की से किसी को देखकर दूसरी खिड़की में मुंह डालकर उसे बुलाता है. यहाँ जैसे खिड़कियों से काम लेनेवाला देवदत्त खिड़कियों से भिन्न है, उसी तरह इन्द्रियों को काम में लेनेवाला आत्मा भी, इन्द्रियों से भिन्न है, जैसे थोड़े ज्ञानवाले पांच पुरुषों से अधिक ज्ञान वाला छठा पुरुष भिन्न है, उसी तरह एक-एक विषय को ग्रहण करनेवाली पांचों इन्द्रियों से सभी विषयों को ग्रहण करने वाला छठा आत्मा भी, इन्द्रियों से भिन्न है. एक सेठ अलग-अलग गुमास्ते रखकर उनसे अपनी इच्छानुसार अलग-अलग काम लेता है. जैसे गुमास्तों से सेठ भिन्न है, उसी तरह इन्द्रियों से अपनी इच्छानुसार अलग-अलग विषय को ग्रहण करने वाला उनका अधिष्ठाता आत्मा भी, इन्द्रियों से भिन्न है. जैसे रेल के डिब्बे इंजन की गति विशेष के अनुसार चलते हैं, मुड़ते हैं, दौड़ते हैं, धीमे चलते हैं, उसी तरह इंद्रियाँ भी आत्मा की प्रेरणा से कार्य करती हैं. रेल के डिब्बों से इंजन भिन्न है उसी प्रकार इंद्रियों से आत्मा भिन्न है.

इस प्रकार से जब स्वशरीर में आत्मा की सिद्धि होती है तो उसी तरह परशरीर में भी आत्मा है. क्योंकि जैसे स्वशरीर में आत्मा होने से इष्ट में प्रवृत्ति देखी जाती है, तद्वत् परशरीर में भी इष्ट अनिष्ट में प्रवृति देखी जाती है. अतः परशरीर में भी आत्मा है, यह प्रमाणित होता है. इससे जीवों की अनेक संख्या सिद्ध होती है. किन्तु सब संसारी जीवों में ज्ञान की हीनाधिकता पाई जाने के कारण सब जीव सर्वथा एक समान नहीं हैं, यह भी सिद्ध होता है. इस असमानता का कारण उनका अपना स्वभाव नहीं है. किन्तु उन पर होने वाला पौद्गलिक कर्मवर्गणाओं का आवरण है.

शरीर यद्यपि अचेतन है तथापि वह चेतन जीव द्वारा चलाये जाने के कारण चेतन सदृश ही दिखाई देता है. जैसे कि बैलों द्वारा चलाया शकट बैलों की तरह ही चलता हुआ दिखाई देता है.

प्रश्न—अगर आत्मा शरीर से भिन्न है तो वह जन्म के समय शरीर में प्रवेश करते और मृत्यु के समय शरीर से निकलते किसी को क्यों नहीं दिखती है ? जैसे पुष्प से गंध भिन्न नहीं, उसी तरह आत्मा भी शरीर से भिन्न नहीं है. जैसे पुष्प के नाश होने से गंध का विनाश हो जाता है उसी प्रकार देह के नाश होने से आत्मा का भी अभाव हो जाता है. गर्भ में शुक्रशोणित के सम्मिश्रण से शरीर का निर्माण होता है. वही शनैः-शनैः बढ़ने लगता है. वहां अन्य स्थान से जीव आकर उसमें स्थान कर लेता है ऐसा कहना केवल कल्पना है.

उत्तर—दूर से आया हुआ शब्द नेत्रों द्वारा नहीं देखा जाता. वह कान द्वारा ही ज्ञात होता है. फिर आत्मा तो सूक्ष्म अरूपी और अमूर्त्त है. वह न नेत्रों के गोचर है और न अन्य इंद्रियों के. इसलिए जीव जन्म-मरण के समय आता-जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिखाई नहीं देता है. जैसे चम्पा के पुष्प को तेल में क्षपण करने से उसकी सुगन्ध पृथक् होकर तेल में मिल जाती है किन्तु पुष्प बना रहता है. इसी प्रकार आत्मा मृत्यु के समय इस शरीर से निकल कर भवान्तर में, अन्य शरीर में, चला जाता है और पूर्व शरीर यहां पड़ा रह जाता है. माता पिता के शुक्रशोणित से बनने वाली देह के सिवा उसमें आने वाली आत्मा का निषेध किया सो भी ठीक नहीं है. क्योंकि माता पिता कई बार मैथुन कर्म करते हैं, किन्तु गर्भ तो कभी-कभी ही रहता है. इससे सिद्ध होता है कि जब कभी उस समय भवान्तर से जीव आने का संयोग बैठता है तभी गर्भ रहता है. अगर गर्भोत्पत्ति में एक मात्र शुक्रशोणित ही कारण होता तो माता पिता के हर मैथुन कर्म के समय में गर्भ रहना चाहिये था. जैसे वनस्पति सचित्त अवस्था में होने पर ही जल सींचने से बढ़ती है सूखा ठूंठ अचित्त होने से नहीं बढ़ता है. उसी तरह गर्भ की वृद्धि भी सजीव अवस्था में ही होती है, निर्जीव अवस्था में नहीं. साधु लोग बरसों नंगे पांव चलते हैं. पर उनके तलुवे नहीं घिसते हैं, जब कि जूता पहनकर चलने से वह कुछ काल में ही घिस जाता है. इसका कारण यही है कि तलुवे सजीव हैं. उन्हें खुराक मिलती रहती है जिससे वे घिसते नहीं. जूता निर्जीव होने से घिसता है. पुष्प का नाश होने से उसकी गंध का भी नाश हो जाता है, उसी तरह देह के नाश होने पर आत्मा का नाश हो जाता है, ऐसा मानना समिचीन नहीं है. क्योंकि मृत्यु के समय देह का नाश कहां होता है ? देह तो मौजूद रहती है. फिर क्यों मृत्यु होनी चाहिए ?

प्रश्न—देह तो रहती है पर जिन भू, जल, अग्नि आदि पंचभूतों के समुदाय से देह में चेतना उत्पन्न होती है, उनके जीर्ण हो जाने पर देह के रहते भी चेतना नहीं रहती है. इसे ही मृत्यु कहते हैं. जैसे धातकी, पुष्प, दाख, जल आदि के मिश्रण से शराब में मादकता उत्पन्न होती है. वह मादकता शराब पुरानी पड़ जाने पर भी शराब के रहते हुए उसमें से निकल जाती है.

उत्तर—पंचभूतों में से किसी भी भूत में चेतना नहीं है. फिर वह पंचभूतों के मिश्रण से कैसे उत्पन्न हो सकती है ? यदि कहा जाय कि धातकी आदि अलग-अलग द्रव्य में मादकता नहीं है किन्तु सब के मिलने पर मद्य उत्पन्न हो जाता है उसी तरह पंचभूतों में से अलग-अलग किसी में चेतना न होने पर भी उनके समुदाय में चेतना उत्पन्न हो जाती है किन्तु ऐसा ही हो तो जलते हुए चूल्हे पर पानी की भरी हंडिया को गरम करते समय पंचभूत इकट्ठे हो जाते हैं, वहां चेतना क्यों नहीं पैदा होती है ? मद्य के प्रत्येक उपादान द्रव्य में अगर मादकता के कुछ अंश न हों तो उनके समुदाय में भी मादकता कैसे हो सकती है ? और फिर धातकी आदि से ही मद्य क्यों बनता ? अन्य द्रव्यों से क्यों नहीं ? जैसे हर रज-कण में तेल के अंश नहीं होते तो उनके समुदाय में भी तेल उत्पन्न नहीं होता है. उसी तरह मद्य के हर एक उपादान द्रव्य में मादकता न होती तो उनके समुदाय में भी मादकता नहीं हो सकती थी. सही चीज तो यह है कि धातकी आदि से जो मदिरा पैदा होती है सो धातकी आदि भी पुद्गल है और उनसे उत्पन्न मदिरा भी पुद्गल है. अतः पुद्गल से पुद्गल ही पैदा हुआ उसी तरह पंचभूत भी पुद्गल है तो उनमें भी पौद्गलिक शरीर ही पैदा हो सकता है, चैतनामय आत्मा नहीं. पुरानी हो जाने से शराब रहते भी शराब में से मादकता निकल जाती हैं उसी तरह शरीर के जीर्ण हो जाने से शरीर रहते भी उसमें से चेतना निकल जाती है, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि सब ही की मृत्यु वृद्धावस्था में होती तो यह भी मान लिया जाता कि शरीर के जीर्ण होने से चेतना नष्ट हो गई किन्तु मृत्यु तो छोटे बच्चों व युवाओं की भी देखी जाती है, यहां तक कि कोई तो गर्भ में ही मर जाता है.

प्रश्न—धातकी दाख आदि प्रत्येक में अल्परूप में मादकता विद्यमान होती है. इस सिद्धान्त को मान लेते हैं. उसी तरह पंचभूतों में भी प्रत्येक में चेतना के अंश हैं और उनके समुदाय में पूरी आत्मा बन जाती है.

उत्तर—ऐसा मानने में भी बाधा है. पंचभूत पुद्गल हैं—मूर्तिक हैं, उनके अंश अमूर्तिक-चेतनास्वरूप कैसे हो सकते हैं ? और सब भूतों के इकट्ठे हो जाने पर चेतना की नई उत्पत्ति मानी जाय तो मृत शरीर में भी भूत समुदाय तो रहता ही है. फिर उसमें आत्मा का अभाव क्यों है ? यदि कहो कि मृत शरीर में से वायु निकल जाने के कारण चेतना नहीं रहती, तो नली के द्वारा वायु प्रवेश कराने पर चेतना पैदा हो जानी चाहिये. पर पैदा नहीं होती है. जो कहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि उस वक्त तेज का प्रभाव होने से चेतना पैदा नहीं होती है और चेतना पैदा होने योग्य विशिष्ट वायु की उपलब्धि भी नहीं होती है, तो फिर यों ही क्यों न कहो कि वह तेज और विशिष्ट वायु आत्मतत्त्व के सिवाय अन्य कोई नहीं है ?

प्रश्न—जैसे मिट्टी जल आदि के संयोग से धान्य आदि पैदा होना प्रत्यक्ष देखते हैं, वैसे ही भूतों के संयोग से जीव पैदा होते हैं ऐसा मानना भी उचित ही है.

उत्तर—धान्य के पैदा होने में मिट्टी जलादिक उपादान कारण नहीं है. उपादान कारण उनके बीच में हैं. वे बीज मिट्टी जलादि से भिन्न हैं. उसी तरह शरीर में चेतना भूत समुदाय की नहीं है किन्तु भूत-समुदाय से भिन्न आत्मा की है. जैसे एक वृद्ध पुरुष का ज्ञान युवावस्था के ज्ञान पूर्वक होता है और युवावस्था का ज्ञान बाल्यावस्था के ज्ञान पूर्वक होता है, उसी प्रकार बाल्यावस्था का ज्ञान भी उसके पूर्व की किसी अवस्था का होना चाहिये. वह अवस्था उस जीव के पूर्व भव की ही सम्भव है. जैसे जीव को वृद्धावस्था में अनेक अभिलाषायें होती है. उसके पूर्व युवावस्था में भी होती थीं और युवावस्था के पूर्व बाल्यावस्था में होती हैं. वैसे ही बाल्यावस्था के पूर्व भी कोई अवस्था होनी चाहिये ताकि इच्छाओं की परम्परा टूट न सके. वह अस्वथा जीव का पूर्व जन्म ही हो सकती है. इसी कारण से तो जन्म लेते ही बछड़ा गाय का स्तन चूसने लगता है. इससे यही सिद्ध होता है कि भवांतर से जीव आकर शरीर को अपना आश्रय बनाता है. वर्तमान में भी समाचार-पत्रों में पूर्व जन्म की घटनायें छपती रहती हैं. अगर पूर्व जन्म नहीं है तो बिल्ली का चूहे से और मयूर का सर्प से स्वाभाविक वैर होने का क्या कारण है ?

प्रश्न—यदि प्रत्येक शरीर में जीव भवांतर से आता है तो इसका अर्थ यही हुआ कि इस जन्म के शरीर में जो जीव है वही पूर्वजन्म के शरीर में था. शरीर बदला है जीव तो वही का वही है. तो फिर सभी जीवों को पूर्व जन्म की बातें याद क्यों नहीं हैं ?

उत्तर—जैसे वृद्धावस्था में किन्हीं को अपनी बाल्या अवस्था की बातें याद रहती हैं और किन्हीं को नहीं रहती हैं, इसी प्रकार किसी जीव को भवांतर की बातें याद आजाती हैं, किसी को नहीं. इसमें कारण जीव की धारणा शक्ति की हीनाधिकता है. दूसरी बात यह है कि जिन बातों पर अधिक सूक्ष्म उपयोग लगाया गया हो वे सुदूरभूत की होने पर भी याद आ जाती हैं और जिन पर मामूली उपयोग लगाया गया हो, वे निकट भूत की भी स्मरण में नहीं रहती हैं. मनुष्य को अपनी गर्भावस्था का स्मरण इसीलिये नहीं रहता है कि वहां उसको किसी विषय पर गम्भीरता पूर्वक सोचने की योग्यता ही पैदा नहीं होती है. इसके अतिरिक्त पूर्व शरीर को छोड़कर अगले शरीर को धारण करने में प्रथम तो बीच में व्यवधान पड़ जाता है, दूसरे अगला शरीर पूर्व शरीर से भिन्न प्रकार का होता है और उसके विकसित होने में भी समय लगता है. चूंकि जीव की ज्ञानोत्पत्ति में शरीर और इंद्रियों का बहुत बड़ा हाथ रहता है. यदि पूर्व जन्म में जीव असंज्ञी रहा हो तो वहां किसी विषय का चिंतन ही न हो सका. अतएव अगले जन्म में याद आने का प्रश्न ही नहीं रहता है. इत्यादि कारणों से प्रत्येक प्राणी को जाति स्मरण का होना सुलभ नहीं है.

प्रश्न—एक लोहे की कोठी में किसी प्राणी को बन्द कर दिया जाय और उस कोठी के सब छिद्रों को ढंक दिया जाय तो प्राणी मर जाता है. उस प्राणी की आत्मा उस कोठी से बाहर निकल जाती है. मगर उस कोठी में कहीं छिद्र नहीं होता है. इससे सिद्ध होता है कि उस प्राणी का जो शरीर था वही जीव था.

उत्तर—उस कोठी में शंख देकर किसी आदमी को बैठाया जावे और सब छिद्र बंद कर दिये जावें. फिर उस कोठी में बैठा आदमी शंख बजावे तो शंख की आवाज कोठी के बाहर सुनाई देती है. आवाज के निकलने से कोठी में कहीं छेद हुआ नजर नहीं आता है. फिर आत्मा तो आवाज से भी अत्यधिक सूक्ष्म है. आवाज मूर्त्त है, आत्मा अमूर्त्त है. आत्मा के निकलने पर कोठी में छेद होने की क्या जरूरत है ?

प्रश्न—मरणासन्न मनुष्य को जीवित अवस्था में तोला जाय और फिर मरने के पश्चात् तत्काल तोला जाय तो वजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में कमी नहीं होती है. अगर शरीर से भिन्न कोई जीव होता तो मरने पर शरीर का वजन कम होना चाहिये था.

उत्तर—हवा भरी हुई मशक का जो वजन होता है वही वजन हवा निकालने के बाद भी उसमें रहता है. जब हवा के निकल जाने पर भी मशक के वजन में कमी नहीं आती है तो आत्मा तो अरूपी और हवा से भी अति सूक्ष्म है. उसके निकल जाने पर शरीर के वजन में कमी कैसे आ सकती है ?

प्रश्न—आंख ठीक हो तो दिखाई देता है, कान ठीक हो तो सुनाई देता है. दोनों ही में खराबी आजाने पर आत्मा न देख सकती है, न सुन सकती है. इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता है कि देखने-सुनने वाला जो है वह इन्द्रिय रूप शरीर ही है. कोई अलग आत्मा नहीं है.

उत्तर—स्वप्नावस्था में मनुष्य अपनी इंद्रियों को काम में लिये बिना भी देखता है, सूंघता है, खाता है, पीता है. यहां तक कि जिस मनुष्य को मरे कई वर्ष हो गये उसे भी प्रत्यक्ष देखता है. इस प्रकार की बातें निश्चय ही शरीर से भिन्न आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करती हैं.

प्रश्न—जीवों की उत्पत्ति भौतिक संमिश्रणों के आधार पर होती है. या तो माता-पिता के रजोवीर्य के मिलने पर या इधर-उधर के परमाणुओं से ही जीवोत्पत्ति हो जाती है. जैसे आटे में जीव पड़ना बालों में जूं पड़ना आदि. अगर ये सब जीव भवांतर से आकर पैदा होते हैं तो भवान्तर के शरीर को छोड़ते ही उनके लिये जैसा शरीर चाहिये वैसे ही शरीर का संयोग अपने आप कैसे बन जाता है ? जैसे किसी जीव को मनुष्य पर्याय में आना है तो उसके मरते ही कहीं अन्यत्र उसी समय पुरुष के और स्त्री के समागम से उत्पन्न शुक्रशोणित का मिश्रण भी तैयार रहना चाहिये, ताकि वह उसमें आ सके. इस प्रकार की तैयारी सदा ही अकस्मात् मिल जाना सम्भव नहीं है. इससे तो यही क्यों न माना जाय कि भौतिक मिश्रणों से ही चैतन्य उत्पन्न हो जाता है. यह नहीं कह सकते कि कोई जीव भवांतर के शरीर से निकलने के बाद, जब तक उनके योग्य शरीर की सामग्री का संयोग न मिले तब तक यों ही भटकता रहता है. क्योंकि विग्रहगति में अधिक से अधिक काल जैन-सिद्धांत में तीन समय मात्र बताया गया है. चौथे समय में तो उसे जहाँ भी जन्म लेना है वहाँ अवश्य पहुँचना ही पड़ता है. यह तीन समय का काल बहुत ही थोड़ा है. जैन शास्त्रों में एक श्वास में ही असंख्यात समय बताये हैं.

उत्तर—जैन-शास्त्रों में जीवों का जन्म तीन तरह का माना है—सम्मूर्च्छन, उपपाद और गर्भ. इनमें से सम्मूर्छन जन्म के लिये तो कोई कठिनाई नहीं है. यह जन्म रजोवीर्य के संयोग से नहीं होता है. यह तो तीन लोक में फैले हुये इधर-उधर के पुद्गल पदार्थों से ही हो जाता है अतः अगणित जीवों के इस जन्म के लिए तो हर समय लोक में सामग्री भरी पड़ी है. उपपाद जन्म देव-नारकियों का होता है. इस जन्म के लिए भी माता-पिता के संयोग की जरूरत नहीं है. इस जन्म के लिये तो नियत स्थान बने हुये हैं और वे सदा तैयार मिलते हैं. रहा गर्भजन्म, उसके लिये अगर माता-पिता के संयोग की जरूरत रहती है तो वह भी दुर्लभ नहीं है. मैथुन कर्म करने वाले जीवों की लोक में कोई कमी नहीं हैं. यह संयोग भी हर समय मिल ही जाता है. मैथुन के अन्त में ज्यों ही रजोवीर्य का पतन होकर मिश्रण हो, उसी समय भवांतर से जीव आकर उसमें पैदा हो, ऐसा भी कोई नियम नहीं है. किसी के मत से रजोवीर्य के उस मिश्रण में सात दिन पश्चात् तक जीव का आना बताया गया है.

इस तरह से जीवों के आवागमन की समस्या भी हल हो जाती है.

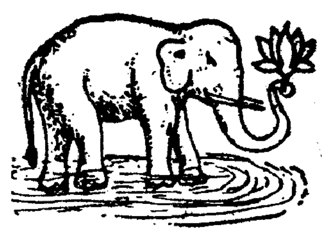

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org